वह तृप्ता को जितना भी मनाने का प्रयत्न करेगा, वह उसी मात्रा में रूठती चली जाएगी। मनाने के इस लम्बे सिलसिले से तो दुकान पर दिन भर टाइप करना कहीं आसान है, कुशल ने सोचा और पनवाड़ी से सिगरेट का पैकेट लिया।

वह लौटा तो भरे टब में पानी गिरने की वही चिर-परिचित आवाज़ सुनायी दी। उसे लगा, जैसे सहसा किसी ने देर से उसके कानों में रखी रूई निकाल फेंकी हो या वह बरसों पुराने माहौल में लौट आया हो उसने देखा, तृप्ता खाट पर औंधी लेटी थी और उसने अपना मुँह तकिए में छिपा रखा था। स्टोव पर पानी उबल रहा था और जले हुए काग़ज़ स्टोव पर रखे पानी में तिर रहे थे। कुशल ने बड़ी एहतियात से एक स्याह काग़ज़ उठाया और तृप्ता की पीठ पर पापड़ की तरह चूर्ण करते हुए बोला, 'कहानी जला डाली क्या? उठो...ब्याहता स्त्रियाँ बच्चों की तरह नहीं रोया करती। तृप्ता, जो धीमे-धीमे सुबक रही थी, फफक कर रोने लगी और उसकी हिचकी बँध गयी। कुशल खाट के निकट पड़े ट्रंक पर बैठ गया और खुले ताले से खेलने लगा, जो मेज़पोश पर पेपरवेट-सा पड़ा था। सिगरेट सुलगा कर भी वह तृप्ता को चुप कराने का साहस न बटोर सका, उसे लग रहा था, तृप्ता का रोना बिलकुल जायज़ है।

✷ ——————— ✷

रवीन्द्र कालिया

जन्म 11 नवम्बर 1938 जालंधर, पंजाब। सातवें दशक के चर्चित कहानीकार, कथ्य-भाषा शैली को लेकर विशेष रूप से संवेदनशील। उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान एवं केंद्रीय हिन्दी निदेशालय से पुरस्कृत। नौ साल छोटी पत्नी, खुदा सही सलामत है, गरीबी हटाओ, सृजन के सहयात्री, गालिब की छुटी शराब, इनकी प्रमुख कृतियां हैं। सम्प्रति नया ज्ञानोदय के संपादक।

वह और जगह

हृदयेश

मुरारी क़सदन देर से लौटा।

वह समस्या, जो किसी भारी और भद्दी शिला-जैसी थी, यों जिस-तिस प्रकार ठेल दी गयी थी, पर वह नहीं चाहता था कि उसके बाद जो किया जाना था, उसे अन्तिम रूप उसकी उपस्थिति में ही दिया जाये। दूसरों के लिए स्थिति उसके कारण असुविधाजनक हो गयी है, यह अनुभूति उसे कुछ इस प्रकार कचोट रही है जैसे वह दावत की सजी-सुधरी मेज़ पर बैठा है और उसके सामने अति स्वादिष्ट और मूल्यवान भोज्य प्रदार्थ परोसे गये हैं और एकाएक उसे पता लग गया है कि मेज़बान ने वह सब उधार लेकर विवशतावश उसके लिए जुटाया है; और फिर वह दावत की मेज़ से न उठ सकता है और न उत्साह और न रूचि के साथ खा ही पाता है। ....बीच में जो रिश्ता है उसकी वजह से उन्हें असुविधा के लिए शायद दुःख नहीं होगा, वे उसे सन्तोष या कुछ ऐसा ही मानेंगे, पर उसके अपने अन्दर जो किसकिसैला गरमबगूला घुमड़ रहा है वह....?

छोटी और सामान्य बातें भी क्यों किसी को इतना अधिक मथती हैं?

नवम्बर के आखिरी दिन थे और सर्दी होनी ही चहिए। इन दिनों रात होते ही अँधेरा जैसे खून के स्याह मायल चकत्तों-जैसा जम जाता हो। दफ्तर का सतीश मिल गया था और वह उससे ढेर सारी बेकार की बातें करता रहा था। फिर वह देर तक बिलावजह सड़क से लगी एक टाकीज़ के कॉरीडोर में घुसकर बाहर जालीदार खिड़कियों में चिपकी तसवीरें देखता रहा। इसके बाद एक

सिगरेट सुलगाकर उस ओर निकल गया जिधर पाँच-मंज़िला एक नयी इमारत बन रही थी। यों वह उसे पहले भी देख चुका था। जब वह लौटकर अपनी गली में आया तब वकील साहब की बैठक की बत्ती बुझ चुकी थी; बदरी दूधवाला अपनी दूकान पर कूँडे में दही जमाने के लिए दूध उड़ेल रहा था; खण्डहर की ओर मुँह किये एक कुत्ता रुक-रुककर गुर्रा रहा था....।

अपने घर के मोहरे में घुसने से पहले उसने बग़ल के दरवाज़ेवाले मकान की ओर देखा। मालिक-मकान का लड़का आकर अब उसमें खुद रहने लगा था। दो महीने पहले वहाँ रुक्मो भाभी रहती थीं। एक नाजुक सी सर-सराहट की लहर उसकी रगों में दौड़ गयी।

सिदरी में एक मुड़ी हुई सलाख के सहारे लालटेन लटकी हुई थी और उसका झिल्ली जैसा धुँधलाया प्रकाश फैला हुआ था। उसके अंदर प्रवेशते ही दो जोड़ी आँखें उसके चेहरे पर जड़ गयीं।

"कहीं कुछ काम था?" अम्मा ने अपने को फैलाना चाहा। या शायद अपने को समेटा ही हो।

खाँसी के ठाँसों से बाबू खाट पर बैठे-बैठे हिलने लगे जैसे किसी काग़ज़ के पुतले को हवा छेड़ गयी हो।

उसने बाबू की ओर देखा। गाढ़े की गंजी-के ऊपर वह तम्बाकू रंग का स्वेटर पहने थे, जगह-जगह जिसमें तार निकले थे। किसी टूटती लहर की तरह उनका सीना उठ और गिर रहा था।

अम्मा की आँखें उसके चेहरे पर अब भी जमी हैं, उसने महसूस किया। - यों ही-दफ़्तर का सतीश मिल गया था। - वह बोल गया।

अम्मा के पूछने में क्या विह्वलता के साथ-साथ एक हलका-सा भय का भाव नहीं था? बाबू और अम्मा को संदेह है कि वह संतुष्ट है। उसके आने से पहले शायद वे उसी के बारे में बातचीत कर रहे थे और उसके लौटने में देर हो जाने से चिन्तित थे।

उसे सतीश की कही गयी बात याद आ गयी। बातचीत खत्म करते हुए उसने पूछा था - "विदा करा लाये? दोपहर की गाड़ी से आये होंगे?-" फिर ओठों की कोरें फैलाता हुआ मुसकरा दिया - "यार, जाओ घर पर। बीबी इन्तज़ार कर रही होगी!...."

दूसरी ओर छोटे-से आँगन के सिरे पर जो कोठा था, उसकी देहलीज़ पर निकलकर कन्तो खड़ी हो गयी थी। वह फिर आँगन पार कर मुसकराती हुई वहाँ आ गयी जहाँ अम्मा थी।

"भाभी के साथ खूब बातें छन रही हैं, क्यों न? जबसे आयी है, मुँह से मुँह जोड़े है।" - अम्मा बिहँस दी और उसकी ओर देखने लगी।

पर वह कन्तो की ओर देखता रहा जो अब भी मुसकरा रही थी। कन्तो उससे तीन वर्ष ही छोटी है। उसकी शादी उससे पहले होने को थी, किन्तु जुड़ी बात टूट गयी। कई बार टूट गयी। बाबू और अम्मा फिर कोशिश में हैं कि कहीं बात जुड़े। सिर से ऊपर होता पानी नीचे उतरे।

उसे लगा कि सामने कोठे में साड़ी की हलकी-सी सरसराहट हुई है। वहाँ आज शायद लैम्प जल रहा था। झिल्ली-जैसी रोशनी वहाँ भी फैली थी।

कुछ देर ऐसा लगा कि किसी मूक चल-चित्र के वे पात्र हैं।

वह अब कोठे के अंदर था। शादी के बाद जब पत्नी आयी थी तो सात दिन रही थी और सात दिनों में शायद सारा संकोच, झिझक और अजनबीपन दूर हो चुका था। पत्नी खाट पर दोनों पैर लटकाये बैठी थी। पैरों में चाँदी की पतली पाज़ेब थी। तलुवे और एड़ी महावर से गुलाबी थे। खाट पर सफ़ेद चादर बिछी थी। पत्नी के दाँतों की लजीली मुसकराहट भी शायद इतनी ही धवल थी। कोठरी की इस बीच सफ़ाई हो गयी थी। जाला वग़ैरह पोंछ दिया गया था। पर सफ़ाई और पोंछे जाने का भाव वहाँ छूट गया था।

सिदरी में बाबू को खाँसी फिर उठी थी और वह फिर खाँसने लगे थे। बाबू को खाँसी की शिकायत है। खाँसी सर्दियों में और उग्र हो जाती है।

बाबू अब सिदरी में सोया करेंगे और वह कोठे में। एक लम्बे समय से, शायद अपने होश-से, वह बाबू को इसी कोठे में सोते देख रहा था। गरमियों में वह कोठे के आगे के किवाड़ और पीछे गली में खुलनेवाली खिड़की खोलकर सोते थे और बरसात और सर्दियों में दरवाजा भेड़कर। वह अब तक दूसरों के साथ सिदरी-में सोता था।

शादी के बाद वह समस्या उठ खड़ी हुई थी कि बहू कहाँ सोयेगी? बहू-बेटी के लेटने-बैठने के लिए आड़-ओट चाहिए ही। घर में केवल वही एक पटा कोठा था। दो सिदरियाँ थीं, जिनमें एक में चौका था, पूजा के लिए उठा हुआ एक घेरा और उसके पीछे ईंधन, भरसावन वग़ैरह रखने की दबी-दबी-सी पट्टीनुमा जगह। दूसरी सिदरी में सोना-लेटना होता था। बायीं तरफ़ बाहर की ओर टट्टी थी और उससे चिपका अन्दर की जानिब टीन की चादरों से गुसलख़ाने की जरूरत को पूरा करनेवाला उठा हुआ एक घेराव बहुत पहले छत पर एक बरसाती थी जो बरसाती पानी में गिर गयी और अब ऊपर बस खुली नंगी छत थी, आकांक्षाहीन जिन्दग़ी-जैसी।

शादी में उसकी सुहाग-सेज पड़ोस की रुक्मो भाभी के घर में बिछायी गयी थी। रुक्मो भाभी के पति ताला और नेम-प्लेट बनानेवाली एक कम्पनी में नौकर थे और उन दिनों माल लेकर दौरे पर गये थे। रुक्मो भाभी के कोई सन्तान नहीं थी। मोहल्ले की औरतों और युवकों की ऐसी धारणा थी कि उनके सन्तान होगी भी नहीं। रुक्मो भाभी के पति की उम्र काफ़ी थी। सगे-सम्बन्धियों से उन दिनों उसका छोटा-सा घर किसी रेल के डिब्बे-जैसा भरा हुआ था। रुक्मो भाभी ने खुद ही सुहाग-सेज वहाँ डालने का प्रस्ताव रखा था।

शादी के बाद की मधु-रातें दूसरे के घर में गुज़ारते हुए उसे कुछ भारी-भारी-सा लगा था। उसकी पत्नी क्या महसूस करेगी? सलोने-सुन्दर अंग पर जैसे एक गन्दा ज़ख्म दीख गया हो।

एक रात पत्नी ने पूछा भी - "मैं दोबारा जब लौटकर आऊँगी तब क्या इन्तज़ाम होगा जी?"

उसने अम्मा के मुँह से इन दिनों जो बात सुनी थी उसको दोहरा दिया - "हम लोग दूसरे बड़े मकान की खोज में हैं। तब तक क्या कोई मिल नहीं जायेगा?"

पत्नी इसके बाद रुक्मो भाभी के पति को लेकर पूछने लगी थी- जिसके बारे में इतने दिनों में उसने अपनी हमजोलियों के मुँह से कुछ जान लिया था-कि क्या वह बहुत ज्यादा बदसूरत भी है और गुस्सैल भी; कि पहले क्या उसकी आदतें बहुत खराब थीं...। उसी रात को उसने सपना देखा कि रुक्मो भाभी का पति गजाधर प्रसाद दौरे से लौट आया है और रुक्मो भाभी पर बिगड़ रहा है कि उसने किसी दूसरे को वहाँ सोने क्यों दिया और उसकी सेज के निकट आकर वह गुस्साया हुआ उसे झिंझोड़ रहा है। उसकी जब आँख खुली तो उसने पाया कि उसकी गरदन पसीजी हुई है। पत्नी उससे सटकर सो रही थी और उसकी लम्बी-लम्बी बरौनियोंदार मुन्दी पलकों पर निश्चिन्तता लिये स्निग्धता थी।- उसे फिर दोबारा बहुत देर तक नींद न आयी और बरसात के दिनों-जैसी एक अजीब-सी घुटन और अकुलाहट आभासती रही।

ऐसी बात नहीं कि उसके बाद उसने किसी दूसरे मकान की तलाश न की हो। अपनी ओर से उसने कोई असर न उठा रखी। कुछ ही ऐसे काम थे जिनमें उसने इतनी अधिक चिंता और उत्साह दिखाया हो। किन्तु भारत की राजधानी दिल्ली-जैसे महानगर में इच्छानुकूल मकान मिलना शाायद एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। एक तो पगड़ी का सवाल था और दूसरा किराये की दर का। जिस मकान में रहा जा रहा था वह केवल बारह रुपये पर था। दूसरा जो उससे कुछ ही बड़ा होता उसके पचास-साठ रुपये माँगे जाते। वह सब क्या चाहने पर भी वह दे सकता?

घर पर सुबह-शाम मकान की चर्चा होती। उसका छोटा भाई राधे या बाबू धीमी-बूझी आवाज़ में बताते कि उनको किसी लड़के या दफ़्तर के साथी से पता

लगा है कि अमुक बस्ती-में अमुक मकान खाली हुआ है। पर वहाँ जाने पर वही हश्र होता। या तो किराया बहुत ज्यादा होता या मोटी पगड़ी का सवाल। अम्मा बुदबुदातीं कि वह किसी दूसरे की जगह-पर हजार-बारह सौ रुपया उधार लेकर कैसे नयी तामीर करवा सकती हैं। मकान-मालिक किराया तो ले जाता है, पर यह नहीं होता कि ऊपर एक कमरा और बनवा दे, वह आठ-दस रुपये किराया और बढ़ाने को तैयार है। पर मकान-मालिक क्या इसके लिए राज़ी है? उसके मकान छोड़ने में ही उसे लाभ था।

स्थिति से सहजता से समझौता बस एक ही तरह संभव था और वह यों कि बाबू वह कोठा खाली कर दें। पर झिझक यह थी कि बाबू को काफ़ी असुविधा और परेशानी थी, विशेषकर सर्दी के दिनों में। सिदरी में सीधी हवा जाती थी। उनकी एकान्त में सोने की भी आदत थी।

पीछे गली के स्कूल के अहाते का हरसिंगार फूल चुका था और रात में हवा में एक मीठी गमक बसी होती थी, कुएँ के शीतल जल में जैसे हलकी-सी मिठास घुली हो।

बहू के बिदा कराने की बात उठती थी।

"उसके लिए किसी जगह का इन्तजाम भी हुआ है कि बुलाने को ही सोचा जा रहा है?"

जैसे एक कमरा हो और उसके अनबुहरे फ़र्श पर मुड़े-तुड़े कुछ काग़ज बिखरे हों और हवा का एक झोंका आया हो और वे सब काग़ज़ फड़फड़ा उठे हों। सुबह का समय था और घर पर सब ही मौजूद थे। बाबू पूजा के लिए उठे हुए घेरे में आसनी बिछाकर जाप कर रहे थे और उसका खिंचा स्वर शायद वहाँ भी पहुँच गया था। कुछ क्षणों के लिए लगा कि जाप रुक गया है और फिर जब शुरू हुआ तब स्वर सहज न था।

कहकर जब उसने अनुभव किया तो बरसात की सीलन-जैसी चिपचिपाहट उसके मन पर छाने लगी। इतना निर्लज्ज वह कैसे हो गया। कौन-सी मनःस्थिति

थी जिसमें वह अपने आवेग को सम्हाल न सका। राधे उसकी ओर किताब के पीछे से ताक रहा था। बरतन मलती कन्तो की पलकें नल के नीचे से बार-बार उसकी ओर उठ जाती थीं। अँगीठी के पास बैठी हुई अम्मा के चेहरे की सिकुड़ी हुई जिल्द के नीचे कोई साया थरथरा रहा था।

"जगह की तंगी के पीछे क्या बहू आयेगी नहीं? कैसे-न-कैसे बेटे, वक़्त काटा ही जाता है" अम्मा के स्वर में भीगा कम्पन था। उसने लक्ष्य किया कि अम्मा की आँखों में आर्द्रता उतर आयी है।

एक ऐसा अदृश्य दबाव था जो असह्य होता जा रहा था। नहीं, जैसे प्रतिपल उसे कोई नंगा कर रहा था।

वह वहाँ से जल्द उठ आया था। फिर जब-जब इस सम्बन्ध में कोई बात उठी वह अपने को बचाता रहा, छिपाता-रहा। उसकी कोई भी इच्छा-अनिच्छा, सहमति-असहमति नहीं। समस्या का एक ही हल था जिसे वही नहीं सब जानते थे और अन्त में उसी पर आया गया था। बाबू सिदरी में आ जायेंगे। सर्दी जब ज़्यादा पड़ेगी, न होगा टाटका मोटा परदा डलवा लिया जायेगा या लकड़ी के तख़्ते वग़ैरह ठुकवा दिये जायेंगे।

उसने अपने में एक बुझापन-सा महसूस किया। स्नायुओं में जैसी ऊष्मता होनी चाहिए, वैसी न थी। उत्साह को जैसे किसी ने मसल दिया हो। उसने इस मनःस्थिति से छुटकारा पाने की कोशिश की, पर कुछ ही देर बाद वह अपने को फिर उसी दबाव के नीचे अनुभव करने लगता बाबू को खाँसी क्या आज ज़्यादा आ रही है? बाबू के लिए सिदरी नयी जगह है। ज़रूर वह एक अटपटापन-सा महसूस कर रहे होंगे।

उसने पीछे गली में खुलनेवाली खिडकी खोल दी। खसती हुई रात में हवा तीखी हो गयी थी और उसमें स्कूल के अहाते के हरसिंगार-की महक घुली थी। चाँद आसमान में दूध में भीगी रोटी-जैसा दिखाई दे रहा था। सर्दियों-की चाँदनी ज़्यादा साफ़ और चमकदार होती है। चाँदनी का एक बड़ा टुकड़ा अन्दर भी रेंग

आया था। कोठे का फ़र्श काफ़ी खुरदरा था। चूने का गट्टा पड़ा था और जगह-ब-जगह चूना उतर गया था और गट्टा नंगा रह गया था। बाबू ने पिछली बरसात में कहा था कि एक बोरी सीमेंट का प्रबंध हो जाये तो छत की दराज़ें भी चिकना करवा लें। पर फिर उन्होंने वह इच्छा दबा ली और छत की दराज़ों में कही-से लाकर पिघला कोलतार गिरा दिया। एक चूहा पीछे छिपा हुआ काठ के संदूक को किट्-कित्-किट् कर कुतर रहा था। आहट पाकर ज़रा देर के लिए चुप हो जाता था और फिर कुतरने लगता था।

बाबू फिर खाँसने लगे थे। सूखी खाँसी के ठाँसों की आवाज़ यों उठती थी जैसे कोई कड़ी चीज़ छीली जा रही हो।

कुछ देर बाद जब उसे पेशाबखाने में जाने-की जरूरत हुई और वह बाहर आँगन में आया, बाबू तब भी खाँस रहे थे। उसे लगा, कन्तो भी सोयी नहीं है और जाग रही है। उसकी आहट पाकर उसने अभी-अभी करवट बदली है और लोई सिर तक खींची है। - उसका बिछावन माँ से इधर ही हटकर था। चार फ़िट का आँगन कोठे और सिदरी में कितना अलगाव रख सकता है।

कुछ देर पहले पत्नी कोठे में किसी बात पर खुलकर हँसी थी, पर तुरन्त बाद ही सहम गयी-उइ राम! - बाहर आवाज़ सुनकर कोई सोचेगा कि बहू कितनी निर्लज्ज है!...

न जाने क्यों उसे इन्हीं क्षणों दस-बारह दिन पहले की वह स्थिति भी याद हो आयी। सुबह आठ या नौ का समय होगा। धूप ऊनी कालीन-जैसी बिछल रही थी और वह ऊपर छत पर चला गया था। दूसरे मकान की मुँडेर पर कबूतर का एक जोड़ा बैठा हुआ था। कबूतर-कबूतरी के आगे-पीछे गरदन फुलाता और गुटरूगूँ की आवाज़ करता चक्कर काट रहा था। एकाकएक कबूतर कबूतरी पर बैठ गया। उसने तभी पाया कि पीछे कन्तो भी आ गयी हैं दो क्षण के लिए दोनों की आँखें मिलीं और हट गयीं। उनमें एक ऐसा भाव जल उठा था जो ओट चाह रहा था। कन्तो नीचे वापस लौट गयी। वह दूसरी ओर हटकर खड़ा हो गया।

उसे लगा कि कन्तो वहाँ उसकी उपस्थिति अनुभव कर रही है। वह गुसलख़ाने को पार करता हुआ पेशाबख़ाने में चला गया।

लौटते हुए सिदरी में उसकी नज़र चली गयी। खाँसने के बाद घरघराहट के साथ बाबू साँस ले रहे थे जैसे किसी बरतन के सूराख में से भाप सूँ-सूँ कर गुज़र रही हो। अम्मा गद्दा डाले ज़मीन पर सो रही थीं। थोड़ा हटकर कन्तो लेटी थी। उसने अभी-अभी करवट फिर बदली थी।....और राधे...ऐं....राधे कहाँ सो रहा है!...जब वह वापस लौटकर आया था, राधे शायद नहीं था। शाायद वह रजनीकान्त की बैठक में सो रहा होगा। रजनीकान्त के छोटे भाई के साथ उसकी पढ़ाई चलती है। इस साल वे दसवें दर्जे में हैं। उसे याद आ गया कि तीसरे पहर ऐसी चर्चा उठी थी कि परीक्षा तक राधे वहाँ सोने को कहता है।

चौदह साल का राधे भी क्या स्थिति से परिचित है और समझौता करना जानता है?

उसे लगा कि हवा में बढ़ी हुई सिहरन उसे तेज़ी से छू रही है। वह अन्दर चला गया।

सुबह चाय के समय उसने पाया कि वह अपने को सबकी निगाहों से बचाना चाह रहा है। वह उस मनःस्थिति से उबरने के लिए अपने से जूझता रहा, पर बार-बार उसी के बीच अपने को पाता।

हृदयेश

जन्म 1930 हिन्दी के चर्चित कहानीकार। अब तक पांच कहानी संग्रह छः उपन्यास प्रकाशित। पिछली आधी शताब्दी से समान रूप से रचनारत-अनेक सम्मान, पुरस्कार प्राप्त।